बालकृष्ण भट्ट आधुनिक हिंदी गद्य के उन आधार स्तंभों में से एक हैं, जिन्होंने न केवल हिंदी निबंध को एक ठोस धरातल प्रदान किया, बल्कि साहित्य की वैचारिक गहराई को भी नए आयाम दिए [1]। उनका निबंध **'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है'** केवल एक साहित्यिक लेख नहीं है, बल्कि यह साहित्य और समाज के अंतर्संबंधों को परिभाषित करने वाला एक कालजयी दस्तावेज है [2]। भट्ट जी का यह कथन कि "साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है", साहित्य की उस शक्ति को रेखांकित करता है जो किसी राष्ट्र या समाज की आत्मा को प्रतिध्वनित करती है [3333]।

इस निबंध के आलोक में यदि हम बालकृष्ण भट्ट के विचारों की समीक्षा करें, तो हमें समाज की मानसिक और सांस्कृतिक प्रगति के कई महत्वपूर्ण पड़ाव दिखाई देते हैं।

### 1. साहित्य: जनसमूह के चित्त का चित्रपट

भट्ट जी के अनुसार, किसी भी देश का साहित्य वहाँ के नागरिकों के हृदय का आदर्श रूप होता है [44]। वे तर्क देते हैं कि जिस प्रकार मनुष्य का चेहरा उसके भीतर के सुख-दुःख, क्रोध और उत्साह का दर्पण होता है, ठीक उसी प्रकार साहित्य भी समाज की सामूहिक मानसिक स्थिति को अभिव्यक्त करता है [5555]। यदि समाज आनंद में है, तो साहित्य में कोकिला के कंठ जैसी मिठास और वसंत जैसा उल्लास होगा, लेकिन यदि समाज शोक या संघर्ष में है, तो साहित्य में भयंकर गर्जन और करुणा की पुकार सुनाई देगी [6]।

भट्ट जी ने इतिहास और साहित्य के बीच एक बारीक अंतर स्पष्ट किया है। उनका मानना है कि इतिहास पढ़कर हम केवल किसी देश की बाहरी घटनाओं (जैसे युद्ध, राजनीति या आर्थिक स्थिति) को जान सकते हैं, परंतु उस समाज के आभ्यंतरिक भावों (Internal feelings) को समझने के लिए साहित्य का अनुशीलन ही एकमात्र मार्ग है [7777]। इस प्रकार, साहित्य समाज की मानसिक प्रगति का सबसे विश्वसनीय लेखा-जोखा है।

### 2. वैदिक साहित्य: आर्यों की शैशवावस्था

साहित्यिक विकास की कड़ी में भट्ट जी सबसे पहले वेदों की चर्चा करते हैं। वे वैदिक काल को आर्यों की 'शैशवावस्था' या बाल्यावस्था कहते हैं [8]। इस युग का साहित्य अत्यंत सरल, निष्कपट और प्राकृतिक है। उस समय के लोगों में आधुनिक समाज जैसी कुटिलता या बनावट नहीं थी [99]। वे प्रकृति की शक्तियों—जैसे सूर्य, वायु और मेघ—को देखकर चकित होते थे और सहज भाव से उनकी वंदना में ऋचाएँ रचते थे [1010]।

भट्ट जी का तर्क है कि वैदिक साहित्य में जो भोलापन है, वह उस समय के समाज की मानसिक सरलता का परिचायक है [11]। वहाँ राजनीति के कुटिल विचार या वर्ण-विवेक के झगड़े नहीं थे [12]। यह काल दर्शाता है कि जब समाज का हृदय शुद्ध और प्रकृति के निकट होता है, तो साहित्य भी वैसा ही पवित्र और मधुर होता है [13]।

### 3. उपनिषद और स्मृतियाँ: बौद्धिक परिपक्वता का उदय

जैसे-जैसे समाज का विस्तार हुआ, लोगों की विचारधाराओं में भी परिवर्तन आया। भट्ट जी बताते हैं कि प्रकृति का निरंतर अनुशीलन करते-करते जब आर्यों के मन में ईश्वर और आत्म-तत्व के प्रति विचार जागे, तो 'उपनिषद' साहित्य का जन्म हुआ [14]। यह समाज की मानसिक प्रगति का अगला चरण था, जहाँ मनुष्य ने केवल प्रकृति की स्तुति करना ही पर्याप्त नहीं समझा, बल्कि उसके पीछे के रहस्यों को खोजना शुरू किया।

जब समाज और बढ़ा और रीति-नीतियों में विविधता आई, तब एकता बनाए रखने के लिए 'स्मृतियों' और 'दर्शनशास्त्रों' की रचना हुई [15]। मनु और याज्ञवल्क्य जैसे ऋषियों ने सामाजिक नियम बनाए, वहीं कणाद और कपिल जैसे विचारकों ने दर्शन की नींव डाली [16]। साहित्य का यह स्वरूप समाज की उस अवस्था को दर्शाता है जहाँ वह व्यवस्था और तार्किकता की ओर बढ़ रहा था।

### 4. रामायण बनाम महाभारत: सभ्यता का विकास और ह्रास

भट्ट जी ने रामायण और महाभारत के माध्यम से समाज की सांस्कृतिक स्थिति का जो विश्लेषण किया है, वह अत्यंत मार्मिक है। वे रामायण काल को भारतीय सभ्यता का 'नूतन यौवन' मानते हैं [17]। उस समय के साहित्य के नायक श्रीराम त्याग और मर्यादा के प्रतीक थे। दो भाइयों (राम और भरत) के बीच राज्य छोड़ने की होड़ लगी थी—यह उस समय के समाज की उच्च नैतिक और सांस्कृतिक स्थिति का प्रतिबिंब था [18]।

इसके विपरीत, 'महाभारत' तक आते-आते सभ्यता 'वार्द्धक्य' (वृद्धावस्था) और गिरावट की ओर बढ़ गई थी [19]। यहाँ साहित्य के नायक कृष्ण और युधिष्ठिर बुद्धि की तीक्ष्णता और कूटनीति के प्रतीक बन गए थे [20]। अब भाई-भाई के बीच सुई की नोक के बराबर जमीन के लिए युद्ध होने लगा [21]। भट्ट जी कहते हैं कि वाल्मीकि ने जिन बातों को अवगुण समझा था, व्यास के समय तक वे गुण बन गए थे—जैसे छल और स्वार्थ-साधन [22]। यह साहित्यिक बदलाव स्पष्ट करता है कि समाज अपनी उदारता खोकर स्वार्थ की ओर बढ़ चुका था।

### 5. पुराण और सांप्रदायिक बिखराव

महाभारत के बाद का समय पुराणों और तंत्रों का काल रहा। भट्ट जी का मानना है कि पुराणों के प्रचार से समाज में 'जातीयता' (राष्ट्रीय एकता) का ह्रास हुआ [232323]। समाज शैव, वैष्णव, बौद्ध और जैन जैसे कई टुकड़ों में बंट गया। यहाँ तक कि राम और कृष्ण के उपासक भी आपस में लड़ने लगे [24]। साहित्य में आए इस सांप्रदायिक रंग ने समाज की उस मानसिक स्थिति को उजागर किया जहाँ सामूहिक राष्ट्रहित के बजाय संकीर्ण मतभेदों को अधिक महत्व दिया जाने लगा था।

### 6. भाषा और लोक-संस्कृति का प्रतिबिंब

भट्ट जी ने निबंध के अंत में भाषा के विकास पर भी चर्चा की है। वे बताते हैं कि किस प्रकार संस्कृत से प्राकृत और फिर आधुनिक भाषाओं (जैसे बंगाली, मराठी, हिंदी) का उदय हुआ [25252525]। वे ब्रजभाषा को 'जनानी' (कोमल) और बैसवारे की बोली को 'मर्दानी' (तेजस्वी) कहते हैं [26]। साहित्य की भाषा में यह विविधता दरअसल समाज के क्षेत्रीय और सांस्कृतिक विस्तार का ही परिणाम थी।

### निष्कर्ष

बालकृष्ण भट्ट के इस निबंध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं मानते, बल्कि उसे 'सामाजिक दायित्व का पौष्टिक भोजन' कहते हैं [27]। वे यह सिद्ध करते हैं कि यदि हमें किसी कालखंड के समाज को समझना है, तो हमें वहाँ के साहित्य को देखना होगा क्योंकि साहित्य ही वह शक्ति है जो समाज की उन्नति और अवनति का सच्चा दर्पण है [28]।

समीक्षात्मक दृष्टि से देखा जाए तो भट्ट जी का यह निबंध हमें सिखाता है कि **साहित्य कभी शून्य में नहीं रचा जाता।** वह जनसमूह के हृदय की धड़कन होता है। जैसे-जैसे समाज का मानसिक विकास होता है, उसका साहित्य भी वैसा ही रूप ग्रहण करता चला जाता है। भट्ट जी का यह विचार आज के दौर में भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि आज का साहित्य भी हमारे समय की जटिलताओं, संघर्षों और आधुनिक आकांक्षाओं का ही विस्तार है।